

योग-विभूति

माँ ने बताया कि उनकी कुछ दिनों के लिये ऐसी अवस्था हुई थी कि उनके शरीर में शास्त्र-निर्दिष्ट अनेक शासन, बन्ध तथा मुद्राएँ स्वयम् प्रकाशित होती थीं। अधिकांश समय यह योग-विभूति जनता के समक्ष नहीं हुई। इस सम्बन्ध में माँ ने कहा था, “जिस प्रकार बीज अंकुरित होने से पहले उसको मिट्टी से दबा कर अंधेरे में रखना होता है उसी प्रकार जीव की साधनावस्था में भी उसके प्रत्यक्ष कर्मों की ओट में अप्रत्यक्ष रूप से अनेक परिवर्तन होते रहते हैं।”

कभी-कभी उनके हाथ, पैर, सिर इस तरह तिरछे टेढ़े हो जाते थे और ऐसा लगता था कि फिर वे सीधे नहीं हो सकेंगे। माँ बतातीं कि, “कभी-कभी मेरे शरीर से ऐसी ज्योति निकलती कि उससे चारों दिशाएँ ज्योतिर्मय हो जाती थीं। ऐसा लगता कि वही ज्योति मानो समस्त विश्व को प्रकाशित कर रही है।” ऐसी अवस्था में वे समय-समयपर अपने शरीर को कपड़े से ढक एकान्त में पड़ी रहती थीं।

ऐसे समय उनके शरीर से ऐसी अलौकिक शक्ति का आविर्भाव होता कि उनकी दृष्टिमात्र से मनुष्य आत्मविस्मृत से हो उठते तथा कोई-कोई चरण छूने से मूर्छित हो जाते थे। उस समय माँ जिस-जिस जगह बैठतीं या लेटतीं वह स्थान अग्नि की तरह गर्म हो जाता।

ढाका में मैंने स्वयं श्री श्री माँ के अनेक प्रकार के आसन देखे। कभी-कभी माँ की श्वास-क्रिया इतनी जल्दी-जल्दी होती थी कि मुझे आशंका होने लगती कि कहीं माँ का दम न अटक जाय। कभी-कभी श्वास-प्रश्वास की क्रिया एकदम लुप्तप्राय हो जाती। एक बार कुछ आसनों की तस्वीरें माँ को दिखायी गयीं। उनमें कुछ को देख कर माँ ने कहा इनमें सिर तथा उरु की स्थिति ठीक नहीं हुई है।

जिन लोगों को उनके साथ रहने का सौभाग्य हुआ है, उनमें से अनेक ने ही देखा है कि माँ बहुत देर तक बिना किसी उद्वेग के एक आसन पर ही बैठी रहती हैं; कभी-कभी बात करते-करते एकदम चुप हो जाती हैं। घण्टों बीत जाते हैं उनका शरीर प्रायः स्थिर ही रहता है। दृष्टि भी शान्त, स्निग्ध और स्थिर हो जाती है। उनकी सब अवस्थाओं ही से यह प्रतीत होता है कि उनका अन्तर हर समय किसी विराट आनन्द में डूबा रहता है। शारीरिक क्रियाएँ उनके लौकिक व्यवहारमात्र हैं। अनेक समय देखा गया है कि सरदी-गरमी का बोध, खाने-पीने का ख्याल उन्हें स्मरण कराने पर होता है। स्मरण कराने पर स्वाभाविक भाव जाग्रत नहीं हो पाता। कभी-कभी मैंने स्वयं देखा है कि बहुत दिनों तक एकमुखी भाव रहने से बोलने, चलने, हँसने यहाँ तक कि खाने-पीने में भी भूल हो जाती है। कोई-कोई पूछते हैं कि श्री श्री माँ की किसी विभूति का क्या कोई दृष्टान्त है? जिनके जीवन का प्रतिमुहूर्त विभूतिमान है; जिनके चिरकल्याणमय स्पन्दन से ही शुष्क प्राण सरस हो उठें, जिनकी स्वतः स्फुरित इच्छाशक्ति के प्रभाव से अलक्ष्य रूप में प्राणियों की चित्तवृत्ति अध्यात्मपथ की

ओर अग्रसर हो उठे, उनकी किसी भी विभूति का परिचय न देकर मैं उन लोगों से कहता हूँ कि कुछ दिन माँ का संगलाभ कर स्वयम् ही उनकी विभूति का अनुभव कर कृतार्थ हों ।

मैं और निरञ्जन^१ एक दिन शाहबाग गये । माँ और पिताजी बैठे थे, माँ के सामने कुछ चित्र जमीन पर खिंचे हुए थे । पिताजी ने बताया, “तुम्हारी माँ ने षट्चक्र खींचे हैं ।” माँ कहने लगीं, “आज दोपहर को मैं घूमते फिरते सहसा इसी जगह आसन में बैठ गयी । ब्रह्मतालु से नासिका की सीध में मेरुदण्ड के आखिर तक अपनी अंगुलियों से (कहीं तीन उँगली, कहीं चार उँगली के -अन्तर पर) नापने लगी तो ऐसा लगा कि इन-इन स्थानों पर एक-एक ग्रन्थि है ।” मैंने देखा कि मूलाधार के ऊर्ध्व की ओर क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अनेक ग्रन्थियाँ हैं, जिनमें से कुछ प्रधान हैं वही इस जगह अङ्कित हैं, मैंने स्वेच्छा से नहीं खींचा है, मेरा हाथ अपने आप घूम कर यह चित्र बन गये । याद रख, इन सब ग्रन्थियों तथा नाड़ियों के संयोग-स्थान से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि सम्भूत मनुष्य के जन्म मृत्यु के संस्कार आबद्ध हैं । वायु और प्राण-रस इनमें से ही कहीं तीव्र गति तथा कहीं मंथर गति से वायु प्रवाहित हो मनुष्य के कर्म और भाव को सञ्चालित करते हैं । जिस प्रकार पृथ्वी के ऊपर जल, जल के ऊपर तेज, तेज के ऊपर वायु एवं वायु के ऊपर महाकाश है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी एक-एक कर पाँच केन्द्र व्याप्त हैं । तनिक चिंतन करके ही समझ सकेगा कि जब मन का भाव पवित्र एवं

आनन्दपूर्ण रहता है उस समय प्राणवायु ऊर्ध्वमुखी होती है । जिस प्रकार तालाब के तलदेश में जल का उदगम है, वृक्ष की जड़ में प्राणरस का आकर्षण-केन्द्र है उसी प्रकार मनुष्य के भी मेरुदण्ड के निम्नतल में जीवनशक्ति का आदिस्वरूप एक महाशक्ति सुप्तावस्था में है । श्रद्धा और धैर्य के द्वारा बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी शुद्ध क्रिया का स्पन्दन वायु द्वारा सञ्चारित हो जब प्रधान-प्रधान नाड़ियों को मथित करता है तब मूलाधार बद्ध शक्ति उन्मुख हो एक-एक ग्रन्थि का भेद करती हुई क्रमशः जितनी ऊर्ध्वमुखी हो उठती है उतनी ही साधक की जड़ता तथा संस्कारों का हास होता जाता है । इस ग्रन्थि भेद के साथ ही साथ बाह्य संसार के रूप रसादि के प्रति आसक्ति का संस्कार शिथिल होता जाता है । इस ऊर्ध्वगामी शक्ति के भ्रूकेन्द्र पर पहुँचने पर (प्राण) वायु की गति सर्वत्र सरल और विशुद्ध हो जाती है । तब साधक—“मैं कौन हूँ ? जगत् क्या है ? सृष्टि क्या है ? आदि स्वरूपों का कुछ-कुछ अनुभव करने लगता है । ऐसी अवस्था आने पर संस्कारों का मूलोच्छेद होता है तथा ध्यानादि की गति ऊँची से ऊँची कक्षा में चढ़ती जाती है । अन्तिम स्तर पर पहुँचाने पर साधक महाभाव में लीन हो जाता है अर्थात् स्वरूप स्थिति लाभ कर समाधि-भूमि पर शान्तिलाभ करता है । इन सब ग्रन्थियों के खुलने के साथ-साथ पहले पहल साधक अनेक प्रकार के शब्द सुना करता है, कभी-कभी उसे ऐसा प्रतीत होता है कि शंख और घण्टे की ध्वनि के समान शब्दों की ये तरंगे विश्वव्यापी महाध्वनि के सागर में मिल रही हैं, उस समय बाहर की कोई चीज तथा भाव उसके चित्त को सहज ही में आकर्षित

१. इनकम टैक्स असिस्टेंट कमिश्नर ।

नहीं कर पाते । साधक जितना ही अग्रसर होता जाता है उतना ही उस महाध्वनि के अमृत-प्रवाह की ओर बढ़ता चलता है, अन्त में उस महाध्वनि की अतल गम्भीरता में उसका चित्त अखण्ड स्थिति लाभ कर लेता है ।”

श्री श्री माँ के इस कथन के प्रायः दो तीन साल बाद मैं John Woodroffe की Serpent Power नामक पुस्तक से ‘षट्चक्र’ की तस्वीरें माँ को दिखाने ले गया । माँ ने उस ओर विशेष लक्ष्य न कर हँसते-हँसते मुझसे कहा “मैं जो कह रही हूँ वह सुन ।” वे प्रत्येक चक्र के पद्म का दल संख्या, यन्त्र, बीज, वर्णादि बताने लगीं । मैंने देखा कि माँ की बतायी हुई सभी बातें चित्रों के साथ मिल रही हैं । माँ ने कहा “मैंने किसी पुस्तक अथवा किसी व्यक्ति से ये बातें नहीं सुनी हैं, प्रसङ्गवश आप ही प्रकाशित हो गयी हैं ।” माँ से और पूछने पर माँ ने कहा, “तस्वीरों में जो रङ्ग देख रहे हो, वह बाहरी सज्जा मात्र है । हम लोगों का शरीर मज्जा आदि जिन वस्तुओं द्वारा गठित है चक्र भी उसी से बने हैं, अन्तर केवल इतना है कि बाहर की ओर से नाभि, आँख, कान, हाथ की रेखाओं में जैसे विशिष्टता है उसी प्रकार चक्रों के गठन भी विभिन्न हैं, वायुगति तथा प्राणशक्ति-जनित रसप्रवाह द्वारा विविध रङ्गों का खेल, बीजादि की मूर्ति एवं ध्वनि वहाँ लक्षित होती है । श्वास-प्रश्वास के संग जब पहले पहल बीज आदि बाहर होते थे तो ख्याल उठता था कि ये सब क्या हैं ? उसी समय अपने ही मुख से प्रत्येक के सम्बन्ध में उत्तर पाती और स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो उठता कि किस-किस स्थान पर क्या-क्या है । उस समय प्रत्येक चक्र का रचना-वैचित्र्य तेरी इन

सब तस्वीरों की तरह ही देखा । उपासना, पूजा, कीर्तन, ध्यान, तत्त्व-विचार और यौगिक क्रिया एकनिष्ठ भाव से होते-होते अपने आप ही चित्तशुद्धि और भावशुद्धि होने से ये सब ग्रंथियाँ खुल जाती हैं । अन्यथा मनुष्य इस काम-क्रोधादि के चक्र से छुटकारा ही न पाता ।”

एक दिन माँ सब लोगों को साथ लेकर ढाका की सिद्धेश्वरी पीठ गयीं । यह स्थान तब उपेक्षित ही था । वहाँ आधा हाथ ऊँची तथा सवा हाथ लम्बी चौकोर एक वेदी थी । माँ उसके ऊपर आसन लगा बैठ गयीं । भक्तवृन्द चारों ओर बैठे थे । इसी बीच में देखा कि माँ ने आसन की छोटी सी ही जगह में अपने को ऐसे संकुचित कर लिया कि सबको मालूम होने लगा मानो आसन के ऊपर माँ का केवल परिधेय वस्त्र ही पड़ा है । माँ तो दिखाई भी नहीं दे रही थीं, सभी उत्सुक हो देख रहे थे कि अब क्या होगा ! धीरे-धीरे हिलना-डुलना आरम्भ हुआ और धीरे-धीरे वेदी पर माँ सीधी होकर बैठ गयीं । प्रायः आधे घण्टे तक स्थिर दृष्टि से ऊपर की ओर देखती रहीं, फिर सहसा बोलीं “अपने ही काम के लिए इस शरीर को तुम लोग यहाँ लाये हो ।”

माँ ने कहा, “कागज की पतङ्ग जिस प्रकार एक तागे के सहारे हवा में उड़ती है । उसी प्रकार योगियों का शरीर श्वास और संस्कार के बल पर शून्य में उठना, सूक्ष्म होना, बृहत् होना, अदृश्य होना आदि अनेक प्रकार के खेल कर सकता है ।” सुना है कि किसी-किसी को स्वप्न में माँ के मुख से मन्त्र मिला है तथा कभी मन्त्र के साथ फूल भी मिला है और जागने पर देखा भी है ।

माँ को कभी किसी को दीक्षा देते नहीं देखा गया है। अनेक के मुँह से सुना है कि माँ कहीं अन्यत्र होते हुए भी सहसा अपने घर में थोड़ी देर के लिए माँ के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वे चौंक उठे।

मेरी भयानक बीमारी के समय माँ कुछ महीनों तक उत्तर-प्रदेश में थीं। ढाका लौटने पर एक दिन माँ ने मुझसे कहा “मैं दो दिन आधी रात के समय तेरे कमरे के इस दरवाजे से आ दूसरे से चली गयी थी, तब तू रोग से खूब ही तड़प रहा था।” मेरी बीमारी बढ़ने पर रात में डाक्टर को बुलाया जाता था। खर्च की बही मिलाने पर देखा गया कि माँ की बताई हुई उन दो रातों को ही डाक्टर आया था। अनेक बार ऐसा भी हुआ कि बहुत से आदमी बैठे हुए हैं, और वे सबके सामने ही आ जा रही हैं और कोई देख नहीं रहा है। माँ कहती हैं “मैं तो तुम लोगों के साथ ही रहती हूँ, तुम देखना नहीं चाहते तो मैं क्या कर सकती हूँ? तुम याद रखो कि तुम चाहे दूर हो या पास, चाहे कुछ भी कर रहे हो हर समय मेरी एक दृष्टि तुम लोगों पर है।”

एक बार गोआलन्द स्टेशन से माँ गाड़ी पर बैठने वाली थीं, प्लेटफार्म से गाड़ी का दरवाजा बहुत ऊँचा था। बहुत दिनों से माँ का दाहिना हाथ बेकाम सा था। माँ के आदेश से ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया ने माँ का बायाँ हाथ पकड़ कर गाड़ी में चढ़ाया। उन्होंने बताया, “मुझे ऐसा लगा मानो किसी बच्चे को उठा रही हूँ।” कभी-कभी माँ को खूब भारी होते भी देखा गया है।

माँ कहती हैं कि उनका चलना बैठना सब ही समान है, वह सदैव ही जाग्रत रहती हैं। यह बिलकुल सच है। क्योंकि देखा

गया है कि कभी-कभी बिस्तरे पर से उठते ही माँ कहती हैं, “मैं अभी उस जगह से आयी हूँ, वहाँ यह हुआ था।” पीछे उसकी सत्यता का प्रमाण मिला है।

मैंने अनेक समय माँ को बिजली की चमक की तरह सहसा एक प्रकाश अथवा छाया-मूर्ति के समान अपने समीप देखा है। कभी-कभी भाव घनीभूत होकर अनेक प्रकार के खेल करता था, अधिकांश समय ही वह सब सच होते थे।

१९३० ई० के अन्तिम भाग में माँ ढाका से लगभग ३०० मील की दूरी पर काक्स बाजार में थीं। मैं ढाका में सुबह बिछौने पर उन्हीं की चिन्ता कर रहा था। कान के पास धीरे-धीरे एक आवाज आयी, “शीघ्र ही आश्रम में मन्दिर की व्यवस्था कर।” सुनते ही मैं चौंक उठा। मैं जानता था कि माँ किसी को भी सीधी तरह से कुछ आदेश नहीं देती हैं, लेकिन माँ के सिवाय इस प्रकार का आदेश कौन दे सकता है। ऐसा होने पर इतना अस्पष्ट क्यों? काक्स बाजार चिट्ठी डाल कर पता लगाया कि इधर कई दिन से माँ मौन थीं, उस दिन ही सुबह आठ बजे माँ ने मौन के पश्चात् कुछ कहा था। बाद में माँ के ढाका आने पर मालूम हुआ कि उस दिन सुबह ही माँ ने बात करना आरम्भ किया था; किन्तु कोई भी स्पष्ट नहीं समझ पाया था। मंदिर के निर्माण का आयोजन तभी से प्रारम्भ हुआ।

मृत साधु पुरुषों तथा अन्य अनेकों की आत्मा को माँ प्रायः ही देखती हैं। माँ कहती हैं, “मेरे सामने जैसे तुम लोग बैठे हो वैसे अनेक अशरीरी भी बैठे हैं।”

माँ कहती हैं, “किस रोग की क्या मूर्ति है यह भी देखती हूँ। इस शरीर में जब वे प्रवेश करना चाहते हैं तो मैं कोई बाधा नहीं देती। जब एक मैं ही सब कुछ कहूँ तो त्याग और ग्रहण का तो प्रश्न ही नहीं उठता। तुम लोगों के साथ जो आनन्द है वही उनके साथ मैं भी।”

१९२९ ई० मई के महीने में माँ ने ढाका छोड़ दिया किन्तु अनेक कारण वश उनके स्वाधीन पर्यटन में बाधा पड़ी। अगस्त के महीने में ढाका लौट आने पर एक दिन माँ को ज्वर हो आया। शरीर में अनेक प्रकार की अस्वाभाविक क्रियाएँ होने लगीं। माँ ने आदेश दिया कि शरीर को उसकी स्वतः स्फुरित गति के अनुसार उठाओ, बैठाओ तथा लिटाओ। प्रायः एक घण्टा उसी प्रकार किया गया। माँ ने बताया कि ये सब शारीरिक क्रियाएँ यौगिक आसन थे। यह सब देख उनके जीवन की ओर से सब शंकित हो उठे। बाद में देखा गया कि उनके सब अंग बेकाम हो गये हैं, उठते-बैठते यदि कोई न पकड़े तो शिथिल गिर पड़ते हैं। ज्वर के साथ सूजन, पेट में दर्द, रक्त दस्त तथा प्रस्राव चल रहा था। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर एक दिन ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया ने कहा, “माँ कृपा करो, तुम्हारा शरीर हम चला ही नहीं पा रहे हैं।” इसके बाद शरीर में जो शून्य भाव था वह तो कम हो गया किन्तु ज्वर वैसा ही रहा। माँ के आदेशानुसार पाँच छः दिन तक रोज ११ बजे से ५ बजे तक ६० अथवा ७० बाल्टी जल माँ के सिर के ऊपर डाला जाता, फिर भी ज्वर का ताप कम नहीं होता था। दवा कुछ नहीं ले रही थीं। एक दिन संध्या के समय ढाका के एक प्रसिद्ध वैद्य माँ को देखने आये। वह कहने लगे; “हमारा शास्त्र

मनुष्यों के रोगों का निदान बतलाता है। इनके तो सभी स्वतंत्र हैं।” इतने लम्बे समय तक माँ को बीमार देख सभी कातर हो माँ के स्वस्थ होने की प्रार्थना करने लगे। इसके दूसरे दिन सुबह ही माँ बोलीं, “पथ्य का प्रबन्ध कर।” जो स्वयं कफ और ज्वर के वेग से १७, १८ दिन से बिस्तर में पड़ी थीं, उन्हें स्वयं अपने पथ्य की व्यवस्था करते देख सब अवाक् थे, जो हो, आदेशानुसार दाल, चावल, तरकारी तैयार की गयी, तीन चार भक्तों ने माँ को चारों तरफ से पकड़ कर पथ्य कराया। थोड़ी-थोड़ी सब चीजें खायीं। ज्वर के बाद ऐसा पथ्य देख अनेक ही घबड़ा गये। किन्तु इसके बाद ही माँ की अवस्था सुधरने लगी।

इस प्रकार की शरीर की विकृति के प्रसंग में माँ ने बताया था, “यदि कभी भी मेरे सहज कामों में यह शरीर बाधा पाता है तो उस बाधा के फलस्वरूप क्या हो सकता है, यही बताने के लिए ये सब विकार दिखाये। यदि वास्तव ही मैं रोगिणी होती तो यह शरीर एकदम ही जड़वत् हो जाता अथवा प्राणवायु ही शरीर को छोड़ देती।

“शय्यागत अवस्था में मुझे किसी भी रोग या असुविधा का बोध नहीं था। स्वस्थ होने पर जिस प्रकार विस्तर पर लेटी रहती हूँ ठीक वैसे ही तब भी थी। मेरे शरीर के विकार तथा तुम लोगों की घबड़ाहट देखकर ऐसा लगता मानो यह भी एक आनन्द का अपूर्व कीर्तन चल रहा है।”

श्री श्री माँ के कार्य-कलाप देख ऐसा लगता है मानो प्रकृत भी इच्छानुकूल चल रही है। इससे यही प्रतीत होता है कि उनकी इच्छामयी शक्ति के स्वाभाविक स्फुरण की ओर लक्ष्य रख कर

चलने से अपनी व्यक्तिगत इच्छा अथवा अनिच्छा के द्वन्द्व में न पड़कर उनके आदेश पालन करने से श्री श्री माँ की विश्वमयी इच्छाशक्ति के अलौकिक खेल में हम कितना आनन्द पाते तथा उन्नत होने के कितने सुयोग हमारे अदृष्ट में मिलते जिनकी सीमा नहीं है। बचपन में हम लोग जैसे अपने इच्छानुसार गुड़िया लेकर खेलते हैं, घरोंदे बनाकर आनन्द प्राप्त करते हैं तथा इसी प्रकार के रोज नये खेलों में मत्त हैं—ऐसी आशंका कभी-कभी मेरे मन में उदय होती है।

विन्ध्याचल आश्रम^१ में कथा प्रसंग में श्री श्री माँ एक दिन ब्रह्मचारी श्रीमान् कमलाकान्त से बोलीं, “इतने दिन हो गये किन्तु आज भी कोई यह न समझ सका कि मैं क्या चाहती हूँ। समझने पर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि तुम क्या चाहती हो अथवा आप क्या चाहती हैं? जाने दो, जिसे जितना समझना है वह उतना ही समझेगा। समझने पर आत्मसम्मान, यश, प्रतिष्ठा, क्रोध, दुःख, अभिमान, अहम्भाव आदि का एकदम परित्याग करना होगा।”

यदि हम चुपचाप उनकी वाणी का अनुसरण कर उनके सत्य सजीव प्रभाव से अपने हृदय को निर्मल कर पाते तो शायद उस परम मातृशक्ति की सनातन विलासलीला को देखने का सुयोग पा हम भी धन्य होते तथा संसार भी धन्य होता।

१. विन्ध्याचल में अष्टभुजा पहाड़ के ऊपर माँ का एक आश्रम है। पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्द तथा तुरीयानन्द के प्रयत्न तथा अर्थसे यह प्रतिष्ठित हुआ। वहाँ आज भी अखण्ड अग्निरक्षा के लिए यज्ञकुण्ड की व्यवस्था है।

एक दिन रमना के मैदान में घूमते समय मैंने देखा कि माँ कुछ भी बोल नहीं रही हैं। तभी समझ गया कि माँ का मौनभाव जाग्रत हो रहा है। कुछ देर तक घूम-फिर कर माँ लौट आयीं। प्रायः ८, १० दिन तक चुप रहीं। इस समय इशारा, संकेत तथा हँसना सभी बोलने के साथ ही स्थगित कर दिया था। अपने ही भाव में बैठी रहती थीं, किसी से कुछ कहने सुनने पर भी उधर नहीं देखती थीं। वे एक बुद्ध प्रतिमा की भाँति लगती थीं। खाने के समय जितना आवश्यक होता मुँह खोलतीं फिर बन्द कर लेती थीं। मौनावस्था में कई एक दिन तो ऐसा लगा मानो बाहरी दुनिया से सभी सम्पर्क टूट गया है। आठ दस दिन के बाद अस्पष्ट दो बातें निकलीं। तब देख कर ऐसा लगता मानो माँ फिर से शारीरिक व्यवहार करना और बोलना सीख रही हैं। इस प्रकार तीन दिन बीतने पर माँ फिर से स्वाभाविक अवस्था में आयीं। माँ की इस प्रकार की अवस्था देखने का सौभाग्य मुझे दो तीन बार हुआ है। उस समय उनकी स्थिर प्रशान्त मूर्ति, सौम्य दृष्टि और उज्ज्वल मुखश्री को देख भक्ति और श्रद्धा से हृदय पिघल जाता था। अपलक दृष्टि से उनकी ओर देखने पर भी तृप्ति नहीं होती थी। माँ जब प्रथमावस्था में तीन बरस तक मौनी थीं तब अनेक ही उनको देखकर गूँगा समझते थे तथा दुःख प्रगट करते हुए कहते थे “विधाता का विधान। इतनी सदगुण-सम्पन्ना सुन्दरी वधू को गूँगा बनाया !!”

माँ कहतीं, “मौनी होना हो तो मन-प्राण एक साथ ही एक चिंता में घनीभूत कर बाहर-भीतर पत्थर की तरह हो जा। यदि केवल वाक्संयम ही करना चाहता है तो वह अलग बात है।”